

हमारे यहां पढ़ने-पढ़ाने के अनुभवों को बिरले शिक्षक ही दर्ज करते हैं। जूलिया वेबर गार्डन की समीक्षित पुस्तक 'मेरी ग्रामीण शाला की डायरी' का हिन्दी में आना महत्त्वपूर्ण कदम है। हमारे यहां शिक्षक इस पुस्तक का नोटिस लेंगे और उम्मीद करते हैं कि हमारे यहां भी ऐसा साहित्य सृजित होगा।

## कक्षा में लोकतंत्र और परिवर्तन का आख्यान

मनीष जैन

### परिचय

'19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से नागरिकशास्त्र की पाठ्यचर्या और नागरिक का विचार' पर शोध प्रबंध, 10 वर्ष तक शिक्षण कार्य, एससीईआरटी, दिल्ली के साथ कक्षा 6-8 पाठ्यपुस्तक निर्माण में भागीदारी। आजकल अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली में अध्यापन कर रहे हैं।

यह किताब एक ऐसी अध्यापिका की डायरी है जिसने 1936 से 1939 के दौरान अमेरिका के एक गरीब गांव के खत्म होते समुदाय के एक कमरे के एक छोटे स्कूल में 8 से 15 साल के, पहली से आठवीं के 27-31 बच्चों को पढ़ाया। यह अमूल्य पुस्तक पहली बार सन् 1946 में प्रकाशित हुई और प्रसिद्ध शिक्षाविद् जॉन होल्ट ने इसकी भूमिका लिखी। 66 साल पहले छपी इस खूबसूरत प्रेरणादायक किताब को समकालीन भारतीय संदर्भ में कई तरह से पढ़ा जा सकता है। एक ओर यह किताब एक साथ शिक्षा दर्शन, शिक्षा के समाजशास्त्र, इतिहास, नीति-निर्माण और ग्राम समाज और विद्यालय के रिश्ते कैसे हों, से जुड़े प्रश्न खड़े करती है। दूसरी ओर यह किताब अध्यापकों की कोशिशों, भूमिका एवं क्षमता और रोजमर्रा स्कूल में आने वाली दिक्कतों से कैसे जुड़ें जैसे सवालियों से पाठिका को वाबस्ता करती है। तीसरी ओर इसे 1936-39 के अमेरिका की शिक्षा व्यवस्था, एक छोटे ग्रामीण समुदाय एवं शिक्षा से जुड़ी दिक्कतों, उपलब्ध संसाधनों, समाज के विभिन्न तबकों और नस्तीय रिश्तों (श्वेत बनाम देशज मूल निवासी जिन्हें 'इंडियन' कहा गया) के एक ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में भी पढ़ा जा सकता है। चौथी ओर यह किताब बच्चों के प्रति बेहद संवेदनशीलता, प्रेम और धैर्य की मांग करती है। जूलिया वेबर का यह रवैया उनके इस लोकतांत्रिक विश्वास से पैदा होता है कि बच्चे 'सामग्री' न हो मनुष्य हैं, संभावना से भरे हैं और मानसिक व भावनात्मक 'असामान्यता' उनकी 'गुणवत्ता' और उनको शिक्षित करने की संभावना पर प्रश्नचिह्न नहीं खड़ा करती। और यह डायरी साथ ही साथ रेखांकित करती है कि लोकतंत्र में गहरा विश्वास रखने वाली एक अच्छी अध्यापिका तमाम विपरीत हालातों में बच्चों की जिंदगी और सीखने में बेहतरीन फर्क ला सकती है। आज की स्थितियों में

इस शिक्षिका की इन कोशिशों और इस संदेश को कैसे पढ़ें, यह अपने-आपमें पाठ (टेक्स्ट), पाठिका और संदर्भ के आपसी रिश्ते और विश्लेषण का एक अलग ही विमर्श एवं मीमांसा रच सकते हैं।

अगर इस किताब को सिर्फ एक अवधारणा या विचार के जरिए बयान करना हो, तो वह लोकतंत्र होगी। पर किताब में व्याख्यायित लोकतंत्र की समझ और व्यवहार, हमें रोज नजर आते वृहद् सांस्थानिक स्वरूप से कहीं गहरा है और साथ ही वह समाज, राजनीतिक तथा संस्थानिक व्यवस्था के लिए जरूरी माना गया है। जूलिया मानती हैं कि जीवन जीने का अच्छा तरीका क्या है, समाज कैसा हो, इसका चित्र हर अध्यापक के मन में होना चाहिए। इस चित्र का विस्तार अनुभव के साथ हो और बच्चों को इसी रोशनी में देख, समझ तय करें कि 'उनके जीवन किस तरह सुधारे जा सकते हैं', उन्हें किन चीजों की जरूरत है और कैसा कार्यक्रम बनाएं जो इसको पूरा करे। यह डायरी दिखाती है कि शिक्षा, शैक्षणिक संस्थाओं, उनके वातावरण, मूल्यों एवं उनके भीतर के विभिन्न रिश्तों में बदलाव एक लम्बे वक्त, निरंतर प्रयास, जो किया उस पर मनन और पुनर्विचार, धैर्य तथा प्रेम और लोकतांत्रिक विश्वास की मांग करता है। वे कहती हैं कि 'यह काम मेरी कल्पनाशक्ति और धैर्य दोनों से भारी कीमत मांगता है', पर वे लोकतांत्रिक शाला के आदर्श को छोड़ना नहीं चाहतीं और जानती हैं कि ये उद्देश्य जोर-जबरदस्ती से हासिल नहीं किए जा सकते हैं (पृ. 125)। वे बच्चों के पास पर्याप्त तथ्यों की कमी को, उनकी जिन्दगी, आसपास की दुनिया और चीजों का अर्थ समझने की इच्छा पर ताला लगाने का साधन नहीं बनातीं। जीवन की परिस्थितियों पर खुद के नियंत्रण को बढ़ावा दे गुलामी के बजाय आजादी और लोकतंत्र का एहसास करना और जीना, उनकी गतिविधियों का उद्देश्य है। वे समूह की साझा समस्याओं, उनके समाधान करने और रोजाना की जिम्मेदारियों का बच्चों के साथ मिलकर बंटवारा करती हैं ताकि वे नागरिक जिम्मेदारियां निभाने के लिए तैयार हों। दूसरे साल के अंत में वे स्वयं बहुत कुछ सीखने और रोजमर्रा के सामूहिक जीवन में 'लोकतांत्रिक तरीके से सोचने और काम करने', सामूहिकता और लोकतांत्रिक भागीदारी के विकास को अपनी कामयाबी मानती हैं। तीसरे साल की शुरुआत में ही इस सामूहिकता का एक बेहद सुन्दर उदाहरण मिलता है जहां लड़के और लड़कियों के बीच बेहतर काम की प्रतियोगिता के दौरान वे एक-दूसरे की मदद करना तय करते हैं और कहते हैं कि इसमें प्रतियोगिता नहीं होगी तो भी 'क्या फर्क पड़ता है', 'काम तो बेहतर होगा न' (पृ. 194)। स्टोनी ग्रोव का वह स्कूल छोड़ देने के कई साल बाद भी, जूलिया वेबर गार्डन सोचती हैं कि 'किसी दिन सभी बच्चों को अच्छे शिक्षक मिलेंगे। यही लोकतंत्र की मुख्य आशा है' (पृ. 307)। उनकी यह आशा व विचार यह प्रश्न पूछते हैं कि क्या अच्छे शिक्षकों के अभाव में बड़े होते बच्चे और उनकी आजादी, क्षमताओं व संभावनाओं को विकसित न कर पाने की असफलता हमारे समाज, राज्य व लोकतंत्र के किस-किस अधूरेपन की ओर इशारा करते हैं।

इस किताब की अपनी भूमिका में जॉन होल्ड सवाल उठाते हैं कि पैसे की कमी का रोना न रोने के बजाय हम सोचें कि पैसा किस तरह खर्च हो। क्या पैसा दिखावे वाले भवनों, कर्मचारियों, 'कमजोर' बच्चों की पहचान, मदद और निदान करने वाले विशेषज्ञों, इस्तेमाल में आने वाले महंगे उपकरणों, उबाऊ पाठ्यपुस्तकों और कंप्यूटर चालित श्यामपट्ट पर खर्च हो? वे बड़े केंद्रीकृत स्कूलों पर खर्च करने की आलोचना करते हैं और इसके बजाय कहीं कम खर्च में ऐसे वितरण केंद्र, सचल पुस्तकालय और प्रयोगशालाएं बनाने का सुझाव देते हैं जिनसे आसपास के स्कूल सामग्री, उपकरण और किताबें ले सकें। सवाल उठता है कि बिना इन सुविधाओं के जूलिया वेबर ने किस तरह ऐसा शैक्षणिक माहौल रचा, जिसमें बेहद विविधता और संपन्नता थी। उन्होंने अपने स्थानीय समुदाय से मदद के अलावा दूसरे स्कूलों, राज्य विश्वविद्यालयों, राज्य कृषि प्रयोग स्टेशन, कला सहकारी सेवा, बड़ई से



लेखक : जूलिया वेबर गार्डन  
अनुवाद : पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा  
प्रकाशक : एकलव्य, भोपाल  
मूल्य : 150 रुपए, पृष्ठ-307

चीजें उधार लीं या बनवाई। साथ ही कितनी ही चीजें जैसे कि खेलघर, रसोई, बाग, परदे, लिहाफ, चित्र स्कूल के बच्चों ने बनाए और उसे साफ किया, सजाया-संवारा। पर भारतीय संदर्भ में इनमें से कई कामों सफाई का जातिगत बंटवारा और खासकर दलित बच्चों से यह काम करवाए जाने का इतिहास यह सोचने को मजबूर करता है कि स्कूल को अपना बनाने और संभालने की कोशिशों में समाज के शक्ति संबंधों की वास्तविकता को चुनौती दे समता का आदर्श किस तरह रोपा जाए और फलीभूत हो।

वेबर द्वारा की गई कोशिशें उनकी दक्षताओं की लंबी सूची की ओर ध्यान दिलाने के अलावा यह सुझाती हैं कि एक ऐसी अध्यापिका जो वाद्य-यंत्र बजा सके, नाच-गा सके; खेले, चित्र बनाए; खेलघर- पुस्तकालय-रसोई-बाग का डिजाइन बना-सुझा सके; पेड़-पौधों, चट्टानों, जानवरों के खुरों को पहचान सके; चीथड़ों से सजावटी सामान, मिट्टी के बर्तन, बुनाई कर सके, वह केवल किताब दोहरा सकने वाली अध्यापिका से कहीं कारगर होगी। महत्त्वपूर्ण सूची का लम्बा होना नहीं बल्कि ऐसा रवैया और कोशिश है जो दूसरों से सीखने को उत्सुक हो और जो चीजें नहीं जानते, वह भी बच्चों के साथ करने से न हिचकिचाए। साथ ही यह प्रश्न उठता है कि इन बहु-आयामी रुचियों और क्षमताओं वाली या सीखने को इच्छुक अध्यापिकाएं उनकी अपनी व्यक्तिगत पहल से मिलेंगी या अध्यापिका प्रशिक्षण कार्यक्रम में इसके लिए कोई व्यवस्थित जगह व समय होना चाहिए।

जॉन होल्ट के सुझाव और जूलिया वेबर की सफल कोशिशें एक ओर केन्द्रीयता, तकनीक और विशेषज्ञों पर निर्भरता के बरक्स विकेंद्रित तथा स्थानीय स्तर पर संसाधनों की उपलब्धता और निर्माण तथा अध्यापक की केंद्रीय भूमिका और पहल पर जोर देती हैं। दूसरी ओर वे शैक्षणिक कामों और उन पर खर्च की पुनर्परिभाषा की भी मांग करते हैं। समसामयिक भारतीय शैक्षिक नीति विमर्श में यह मांग संकुचित दायरों में सिमट अध्यापक की पिटाई और तनख्वाह घटाने के लिए इस्तेमाल हो सकती है, इसका खतरा यह किताब पढ़ते हुए बार-बार याद आता है। आज जब शिक्षा का एक विमर्श बच्चों और अध्यापकों को एक-दूसरे के विरोधी के रूप में खड़ा करता है, तब जॉन होल्ट की भूमिका और यह किताब दो महत्त्वपूर्ण बातें एक साथ कहती है। यह पुस्तक बड़े-बड़े आदर्शों के आख्यान के बजाय बच्चों को करने के आनंद और संतुष्टि के पक्ष में खड़ी होती है। वह बच्चों को चुपचाप सोचने, ध्यान-मनन करने का अनुशासन और आनंद सिखाने का उपाय सोचने को प्रेरित करती है, 'ताकि उनका विश्राम भी उतना ही उन्माद से न भरा हो जितना उनका काम। क्योंकि अगर हम जल्दी ही यह नहीं सीखते, तो हम अपनी व्यस्तता से धरती को ही नष्ट कर डालेंगे' (पृ. 16)। साथ ही वह याद दिलाती हैं कि जूलिया वेबर की तरह 'हमारी कक्षाओं में तमाम ऐसे शिक्षक हैं जो इस तरह के कल्पनाशील, नवाचारी और इस सबसे भी अधिक मानवीय तरीके से हमारे स्कूलों में बच्चों के साथ काम करने को तैयार और आतुर हैं' (पृ. 16)।

विद्यालय का समुदाय और जिंदगी से क्या रिश्ता है/हो? क्या स्कूल में समुदाय, उसके लोगों के जीवन, काम, जरूरतों और परेशानियों के लिए जगह है? जूलिया वेबर का जवाब है कि हां जगह है और स्कूल इस पर बात करे, निपटे और सुलझाए और गांव तथा शहर दोनों जगह खत्म होती सामुदायिक भावना को पुनर्जीवित करे। क्या शिक्षा केवल सामाजिक पुनरुत्पादन का जरिया है या वह गरीबी, विपरीत परिस्थितियों और झगड़ों में फंसे बच्चों के जीवन की गुणवत्ता में कुछ फर्क ला सकती है और अगर हां तो वह सुधार और बदलाव कैसे आएगा? वे गरीब और मेहनतकश परिवारों के बच्चों के घर जाकर उनके जीवन के दबावों को जान और महसूस कर पाती हैं। एक तरफ जूलिया को अपनी सीमाओं और लाचारी का अहसास होता है। दूसरी ओर वे मानती हैं कि बदलाव के लिए यह आस्था हो कि 'बच्चे महत्त्वपूर्ण हैं', उन्हें जानना-समझना जरूरी है, अध्यापक उनके साथ 'जीने और काम करने की एक राह' चुने और अध्यापिका अकेले नहीं, बच्चों के साथ मिलकर ही ऐसा फर्क ला सकती है। पर श्रेष्ठता तक पहुंचने की यह राह संघर्षों, असफलताओं और आत्म-संशयों से होकर गुजरती है। पाठिका पूछ सकती हैं कि बच्चों के घर जाकर उनकी जिंदगी के बारे में समझ बनाना क्यों जरूरी है? स्कूल में कितने बच्चों की संख्या तक ऐसी कोशिश संभव है? क्या भारतीय समाज में महिला अध्यापकों की व्यावसायिक जिम्मेदारियों और पहचान तथा लिंग आधारित पारिवारिक जिम्मेदारियों, समाजीकरण और पहचान का आपसी टकराव भी

स्कूल से बाहर बच्चों को जानने की पहल पर असर डालता है?

यह डायरी बताती है कि कक्षा की ऐसी तैयारी कैसे करें जो बच्चों को उपलब्धि-बोध दे, अध्यापिका को उनका अवलोकन करने का मौका और वक्त दे, जो पढ़ना है उसके साथ सवाल दे, चर्चा करे कि बच्चे क्या करते हैं और वे पढ़ने के किस स्तर पर हैं। यह तैयारी आम शिक्षण प्रशिक्षण केन्द्रों में सिखाए जाते और स्कूलों में अध्यापिका द्वारा बनाई जाती 'पाठ योजना' और अध्यापिका एवं बच्चों के बीच दोस्ती के प्रति हिंकारत से अलग है। जूलिया की योजना का केंद्र केवल पढ़ना, गणित, खेल, व्यायाम ही नहीं है बल्कि बच्चे कैसे एक साथ खेलना सीखें, उनके झगड़ों पर कैसे बात करें और सुलझाएं, किस तरह लड़कियों के प्रति लड़के अपने लैंगिक पूर्वाग्रहों से बाहर आएंगे, भी शामिल है। जूलिया बच्चों को अपनी भूल खुद पकड़ने में मदद करती है और बहुत से बच्चों की एक-सी गलतियां होने पर उन पर सामूहिक चर्चा करती हैं।

कक्षा में अपने पालतू जानवरों को रखने की बच्चों की मांग, उस पर चर्चा और हल, यह प्रश्न हमारे सामने रखते हैं कि कक्षा किसकी है, कक्षा क्या है और कक्षा में क्या हो। कक्षा में खेलने की जगह बनाम बच्चों को एक जगह बिठाए रखने की कवायद, योजनाबद्ध सिखाना और वक्त खराब होने कि चिंता, नाराजगी पर चर्चा कर ज्यादा बेहतर और न्यायपूर्ण व्यवस्था बनाना संभव है, जैसे अनेक उदाहरण एक नई तरह की कक्षा और स्कूल रचने की बानगी प्रस्तुत करते हैं। अगर कोई बच्चा परीक्षा के लिए तैयार न हो और घबराए तो क्या करें? क्या ज्यादा महत्वपूर्ण है- परीक्षा, सीखना और आत्म-विश्वास? क्या बिना परीक्षा दिए, दूसरों द्वारा दी गई परीक्षा से स्वयं सीखा जा सकता है? क्या काम में रुचि का अभाव अनुशासनहीनता की निशानी है या काम के एकरूपीय दोहराव से पैदा बोरियत की? यह विचार कि ज्ञान केवल किताबों और कक्षा में ही नहीं बल्कि कक्षा के बाहर भी है, लगातार दोहराया जाता है। बच्चों का अपना लेखन कक्षा की दीवार पर जगह पा, उन्हें पहचान, प्रोत्साहन और प्रेरणा देता है। विभिन्न गतिविधियां जैसे किताबें देखना, घूमने जाना और साक्षात्कार करना, सिर्फ एक वक्त की गई गतिविधि नहीं रहती। बल्कि जूलिया इनसे पहले और बाद क्या होगा, इसका खाका बनाती हैं। वे ध्यान रखती हैं कि छोटे और बड़े बच्चों को किस तरह के मौकों की जरूरत है, वे मिल रहे हैं या नहीं, कैसे मिलें और अपनी उम्र व रुचि के हिसाब से क्या अनुभव या गतिविधियां करना उन्हें अच्छा लगेगा।

कहानी से नाटक रचना, संवाद लिखना, दृश्यों की कल्पना, कठपुतली बनाना, पक्षी और भू-अवलोकन बच्चों में आत्म-विश्वास व संतुलन विकसित करने का जरिया बनते हैं। बच्चे अपने अखबार के लिए लेख लिखना और पुस्तक-समीक्षा करना सीखते हैं। संविधान बनने, समुदाय और सामुदायिक सेवाओं, उद्योगों और समस्याओं का अध्ययन, तत्कालीन और औपनिवेशिक समय की तुलना विद्यालय के किसी भी शिक्षक को ज्ञान निर्माण के विभिन्न तरीकों, मौकों और गतिविधियों को जीवंत उदाहरणों के द्वारा सुझाती है। हालांकि बच्चे इन समस्याओं के बारे में कुछ खास नहीं कर सकते पर जो वे सीख रहे हैं, 'उससे उनका नजरिया बनेगा'। साथ ही बच्चों की वास्तविक समझ से परे का 'बौद्धिकीकरण' 'महज प्रचार... बन जाता है जो खतरनाक है' (पृ.152)।

इस प्रेरणादायी अध्यापिका और उसके काम के बारे में कुछ और प्रश्न इन अनुभवों एवं कोशिशों को समझने और समसामयिक भारतीय संदर्भ में उनका महत्त्व और निहितार्थ समझने में हमारी मदद कर सकते हैं। क्या यह स्वतःस्फूर्त, स्वतःप्रेरित अध्यापिका राज्य द्वारा नियंत्रित सिर्फ एक वेतनभोगी कर्मचारी है या एक स्वायत्त अध्यापिका जिसके पास पाठ्यचर्या के निर्माण, बच्चों के सीखने की गति एवं उनके सीखने का मूल्यांकन स्वयं करने की आजादी, जगह और लगन है? क्या इस छोटे गरीब गांव में अमेरिकी राज्य और बाजार की बेहद कम नजर आती उपस्थिति यहां की विशिष्ट स्थिति थी जिसने इस प्रयोग को संभव बनाने में अपना योगदान दिया? इस कम उपस्थिति के बावजूद, वहां शिक्षा विभाग एवं राज्य की अन्य संस्थाओं द्वारा बनाए/उपलब्ध करवाए गए संसाधनों एवं व्यक्तियों ने जूलिया वेबर की कोई मदद की या नहीं और अगर हां तो कैसे? क्या यह प्रयोग एकल विद्यालयों की नीति और आठ में से कम से कम सात घंटी पढ़ने की अपेक्षा और कक्षा में टूस-टूस कर भरे बच्चों की उपस्थिति को सही ठहराता है? क्या वंचित समुदायों और उनके बच्चों की अच्छी शिक्षा के लिए

अधिक संसाधन बनाम अध्यापक की कोशिश के दो सिरों में बंटी बहस को किसी और तरह पुनर्भाषित करने की आवश्यकता है और अगर हां, तो उसकी रूपरेखा और बहस-बिंदु क्या होंगे? क्या केवल आत्म-प्रेरणा और लगन इन परिस्थितियों में काम के लिए आवश्यक गुण हैं? और क्या विपरीत परिस्थितियां अध्यापक की आत्म-प्रेरणा और लगन पर कुछ असर डालती हैं?

तीसरे साल में दो महीने तक जूलिया वेबर अपनी डायरी नहीं लिख पातीं और नोट करती हैं कि 'खुद थकी होने के कारण', वे 'संवेदनशील नहीं रह पाईं', बच्चे चिड़चिड़ाने लगे और सहकार छिन्न-भिन्न हुआ। पर इस समस्या को पहचानकर वे आवश्यक सबक लेती हैं। पाठ्यचर्या पर स्वयं एक कोर्स पढ़कर और अपने प्रोफेसर की मदद से परचा लिख, वे नया सीखती हैं। चौथा साल शुरू होने से पहले का ग्रीष्मावकाश, सैर और तैरना उन्हें तरोताजा करता है और वे खुद 'अपनी क्षमताओं और दुनिया में अपने स्थान' को लेकर सचेत होती हैं। ऐसे में क्या स्कूली अध्यापक के लिए पढ़ने के ऐसे मौके, स्वयं उसकी क्षमताओं के विकास, अपने अनुभवों पर मनन एवं उससे शैक्षणिक सिद्धांत रचने, विद्यालय में नए संस्थाई लोकाचार बनाने और बच्चों के सीखने का जरूरी हिस्सा हैं?

एक तरफ किताब ऐसे बहुत से जरूरी सवाल उठाती है और दूसरी ओर उसकी कुछ टिप्पणियां तथा चुपियां चुभती हैं और यह याद दिलाती हैं कि हर किताब अपने वक्त को भी दर्शाती है। क्या अच्छा नाश्ता खाना केवल आदत का सवाल है? स्कूल समितियों में बच्चों की भागीदारी और दोपहर के भोजन में जात-पात को एक साथ कैसे देखें, समझें और सुलझाएं? किताब में नस्लीय भेदभाव का कोई जिक्र नहीं है और अमेरिका के देशज मूल निवासी जिन्हें 'इंडियन' कहकर बुलाया गया, उनका जीवन संग्रहालयी उपागम के तहत, केवल उनकी कहानियों और नृत्य के जरिए समझा और खोजा जाता है। स्कूल पाठ्यचर्या में उनकी इन्हीं रूपों में जगह उनके साथ हुई औपनिवेशिक और नस्लीय हिंसा एवं रिश्तों तथा उनके जाति-संहार को छुपाते हैं। संग्रहालय जाकर उन लोगों के जीवन को खोजना जिन्होंने यह बस्तियां बसाईं अपने स्थानीय इतिहास को जानने और रचने का जरिया बनता है। साथ ही वीहड़ता में गोरे समुदाय को बनाने का आख्यान एक खाली दुर्दम जगह में गोरी नस्ल के जुझारूपन, हिम्मत और पहल का आख्यान रचता है जो औपनिवेशिक विमर्श का हिस्सा रहा है। बच्चों के प्रति संवेदनशील अध्यापिका भी अपने समय, समाज, संसार के सामाजिक संबंधों पर प्रश्न नहीं उठाती है। किताब का लोकतंत्र गोरों के लोकतंत्र तक सीमित हो जाता है। इन उपेक्षित और शोषित 'नागरिकों' के लिए गोरों द्वारा स्थापित विद्यालयों और पाठ्यचर्या के अनुभव और उनके लिए लोकतांत्रिक स्कूल और पाठ्यचर्या का क्या अर्थ होगा, ऐसे प्रश्न हैं जो समाज में न्याय, समता, अधिकार, आजादी, लोकतंत्र, अल्पसंख्यकों-उपेक्षितों और शिक्षा की अवधारणाओं और उनके आपसी संबंधों पर विचार की मांग करते हैं।

यह किताब भले ही यह सवाल न उठाती हो, पर इतने अन्य मुद्दों पर हमारा ध्यान आकर्षित करती है कि बच्चों और शिक्षा से सरोकार रखने वाले किसी भी माता-पिता, वयस्क, शिक्षकों, शिक्षा संस्थानों और संगठनों के लिए यह एक अनिवार्य पुस्तक है। इसे शिक्षण-प्रशिक्षण के सभी कार्यक्रमों में इस्तेमाल किया जा सकता है। बतौर पाठक हम जूलिया वेबर की इस डायरी को और बेहतर समझ पाते अगर हमें उनका जीवनवृत्त, उस समय के अमेरिका और उसकी शिक्षा व्यवस्था की स्थिति, उसमें चलती बहसों एवं बदलाव को बताता एक परिचयात्मक निबंध मिल जाता। लेकिन दिल और दिमाग को गहरे तक छू लेने वाली इस डायरी को पढ़ने के बाद, पाठक खुद इस संदर्भ को ढूँढ़ेंगे, ऐसा असर व विश्वास तो इस किताब से उभरता ही है। ♦